श्री जगन्नाथ रथ यात्रा - कथा काव्य

(भावार्थ सहित)

पौराणिक कथाओं पर आधारित

कवि

डॉ यतेंद्र शर्मा

श्री राम कथा संस्थान पर्थ, ऑस्ट्रेलिया, ६०२५

श्री राम कथा संस्थान पर्थ उद्देश्य

- श्री राम कथा संस्थान भगवान् स्वामी श्री रामानंद जी महाराज (१४वीं शताब्दी) की शिक्षाओं पर आधारित एक सनातन वैष्णव धार्मिक संस्थान है।
- श्री संस्थान का सिद्धांत धर्म, जाति, लिंग एवं नैतिक पृष्ठभूमि के आधार पर भेदभाव रहित है। 'हरि को भजे सो हरि को होई' संस्थान का मूल मन्त्र है।
- श्री संस्थान का मानना है कि शुद्ध हृदय एवं निःस्वार्थ भाव भक्ति ईश्वर को अति प्रिय है। सभी प्रभु-भक्त एक दूसरे के भाई बहन हैं।
- ब्रह्म मनोभाव: भगवान् श्री राम, माता सीता एवं उनके विविध अवतार ही सर्वोच्च ब्रह्म हैं। वह सर्व-व्याप्त एवं विश्व के सरंक्षक हैं।
- आत्मा मनोभाव: आत्मा का अस्तित्व सर्वोच्च ब्रह्म के परमानंद पर निर्भर है। आत्मा को सर्वोच्च ब्रह्म ही निर्देशित एवं प्रबुद्ध करते हैं। श्री राम, माता सीता एवं उनके अवतार ही जीवन का अंतिम उद्देश्य मोक्ष दिलाने में समर्थ हैं।
- माया मनोभाव: माया प्रकृति के तीन गुण - सत, रज और तमस, के प्रभाव से प्राकट्य होती है। माया को सर्वोच्च ब्रह्म ही नियंत्रित करने में समर्थ हैं। सर्वोच्च ब्रह्म पर ध्यान केंद्र करने से माया का विनाश होता है, और जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिल मोक्ष की प्राप्ति होती है।
- श्री संस्था इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निरंतर सनातन धार्मिक पत्रिकाएं, पुस्तकें, पुस्तिकाएं, काव्य ग्रन्थ आदि की रचनाएं एवं प्रकाशन करती है। साथ ही, समय समय पर श्री राम एवं अन्य धार्मिक कथाओं के संयोजन का भी प्रयास करती रहती है।

श्री जगन्नाथ रथ यात्रा - कथा काव्य

(भावार्थ सहित)

पौराणिक कथाओं पर आधारित

कवि

डॉ यतेंद्र शर्मा

प्रकाशक

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज़, ऑस्ट्रेलिया, ६०२५

Website: https://shriramkatha.org

Email: srkperth@outlook.com

समर्पण

जय श्री कृष्ण चैतन्य, प्रभु नित्यानंद, जय श्री अद्वैत गदाधर, श्रीवासादि गौर भक्त वृन्द

क्रमिका

समर्पण.....4
प्रार्थना.....6
वन्दना.....8
श्री कृष्ण का साकेत गमन.....11
प्रभु का सम्राट इन्द्रद्युम्न से मिलन.....15
विग्रह क्षदन कथा.....31
श्री विग्रह प्रकाश.....37
अपूर्ण विग्रह रहस्य.....45

प्रार्थना

यह सर्व विदित है कि श्री जगन्नाथ पुरी में श्री प्रभु जगन्नाथ अपने भ्राता बलराम एवं बहन सुभद्रा के साथ आषाढ़ मास की शुक्ल पक्ष द्वितीया को रथ द्वारा गुंडिचा मंदिर (नित्य मंदिर से लगभग एक कोस की दूरी पर) को विश्राम हेतु प्रस्थान करते हैं। नवमें दिन दशमी को वह तीनों (प्रभु जगन्नाथ, भ्राता बलराम जी एवं बहन सुभद्रा) वापस नित्य मंदिर में लौट आते हैं। यह प्रभु जगन्नाथ-रथ-यात्रा हिन्दुओं के महत्वपूर्ण धार्मिक उत्सवों में से एक है, और बड़ी धूमधाम से पुरी में मनाई जाती है। लाखों की संख्या में भक्तगण एकत्रित हो भगवान् जगन्नाथ, उनके भ्राता श्री बलराम एवं बहन सुभद्रा का रथ खींचने में मदद करते हैं। ऐसी मान्यता है कि जिस भाग्यशाली को रथ का स्पर्श करने का भी अवसर मिल जाता है, उसे इहलोक में सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं मरण पश्चात मोक्ष की प्राप्ति होती है।

वैसे तो श्री जगन्नाथ-रथ-यात्रा उत्सव मनाने के कारणों का विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न विवरण दिया गया है, लेकिन ऐसी मान्यता है कि महाप्रभु श्री कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु के श्रीमुख से निकले शब्द ही सप्रमाण हैं। श्री कृष्णावतार चैतन्य महाप्रभु एवं उनके परिकरों द्वारा उत्सव का कारण एवं पालन करने की बताई हुई विस्तृत रीति ही सत्य है। श्री सनातन गौड़ीय मठ के परम पूज्यनीय त्रिदण्डस्वामी श्री भक्तिवेदांत नारायण स्वामी जी महाराज के प्रवचनों पर आधारित कवि (डॉ यतेंद्र शर्मा) ने इस कथा काव्य की रचना की है।

हिन्दू धर्म के प्रत्येक तीर्थ एवं उत्सव की पृष्ठभूमि में कोई न कोई प्रभु का विशेष उद्देश्य रहा है। श्री जगन्नाथ मंदिर में परम पिता प्रभु श्री जगन्नाथ, शेषावतार भगवान् श्री बलराम जी एवं माता सुभद्रा के अपूर्ण विग्रह स्थापित एवं प्रतिष्ठापित होने का भी गूढ़ रहस्य है, जो आपको इस कथा काव्य के माध्यम से संज्ञान में आएगा। प्रभु की माया और उनके सन्देश देने की विधि अद्भुत है।

मैं अत्यधिक भाग्यशाली रहा हूँ कि मुझे परम पावन संतो के चरणों में बैठकर अथवा उनकी उत्कृष्ट कृतियों के पढ़ने से प्रभु के अनेकानेक अंतरंग गूढ़ रहस्य

जानने और समझने का अवसर मिला है। यद्यपि प्रभु की माया प्रभु के अनंत भक्तों के अतिरिक्त कोई और नहीं समझ सकता, मैं तो एक साधारण प्राणी हूँ, फिर भी परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्री भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी जी महाराज, श्री सनातन गौड़िया मठ, के सम्पादित प्रवचनों से ज्ञान प्राप्त कर जो मैंने श्री जगन्नाथ रथ यात्रा का माहात्म्य समझा, उसे काव्य स्वरुप में प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ। अवश्य ही अनेक त्रुटियाँ हुईं होंगी। 'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटों को उत्पात', उस उत्पात को मुझे बालक समझ आप सभी क्षमा करेंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

ध्यान में गुरुदेव महाराज के आदेशानुसार मैंने श्री कृष्णावतार महाप्रभु चैतन्य जी के श्रीमुख से कही एवं परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्री भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी जी महाराज के प्रवचनों से प्रभावित होकर श्री जगन्नाथ रथ यात्रा को कथा काव्य में प्रसतुत किया है। श्रुति कहती है कि काव्य के माध्यम से प्रभु का महामण्डन करने से जो तरंगे वातावरण में उत्पन्न होती हैं, वह भक्त के हृदय को प्रभु के हृदय से जोड़ देतीं हैं। आप भी इस कथा काव्य का पठन श्रवण करें। प्रभु श्री जगन्नाथ, शेषावतार श्री बलराम एवं माता सुभद्रा का आशीर्वाद ग्रहण करें। स्वयं प्रभु ने कहा है कि जो भी मेरी श्री जगन्नाथ यात्रा का पठन, श्रवण, मनन करेगा, मैं उसपर विशेष कृपा करूंगा। उसे इहलोक में सुख, शांति, ऐश्वर्य, धन-धान्य एवं मरण उपरान्त साकेत धाम में निवास मिलेगा।

मैं श्री राम कथा संस्थान के सह-संस्थापक डॉ श्री जुगल अगरवाला, परम बड़े भाई समान मित्र श्री कौशल कांत शुक्ला एवं श्री सुनील गर्ग जी का समय समय पर मेरा मार्ग प्रदर्शन करने के लिए सदैव आभारी रहूंगा। साथ ही मैं अपने परिवार को नमन करता हूँ जिनके सहयोग के बिना मैं इस आध्यात्मिक अलौकिक प्रभु के संसर्ग में कदापि प्रवेश नहीं कर सकता था।

आपका अपना, प्रभु के चरणों में,

यतेंद्र शर्मा

श्री जगन्नाथ रथ यात्रा २०२३

वन्दना

करें नमन हम पद गुरवर का, जिनसे मिला लक्ष्य जीवन का ।
बिन गुरु नहीं ज्ञान भक्ति का, हो नहीं बोध सत धर्म राह का ।। (१)

भावार्थ: *हम गुरुदेव के चरणों की वन्दना करते हैं जिनके कारण हमें जीवन का लक्ष्य प्राप्त हुआ। बिना गुरुदेव (के आशीर्वाद) के भक्ति का ज्ञान नहीं होता, और न ही सत्य धर्म मार्ग पर चलने का बोध होता है।*

करें वंदन हम प्रथम देव का, विघ्नविनाशक श्री गणपति का ।
मोदक प्रिय पार्वती सुत का, रिद्धि सिद्धि के श्री स्वामी का ।। (२)

भावार्थ: *अब हम प्रथम देव विघ्नविनाशक श्री गणपति जी का वंदन करते हैं, जो मोदक प्रिय, माँ पार्वती जी के पुत्र एवं रिद्धि, सिद्धि (देवीओं) के स्वामी हैं।*

बसे हृदय स्वरुप श्री राम का, जगद जननी माता सीता का ।
रूद्र अंश सुवन पवन का, संकटमोचन श्री हनुमंत लला का ।। (३)

भावार्थ: *भगवान् श्री राम, जगदम्बा माँ सीता, रूद्र अवतार संकट मोचन पवन-सुत श्री हनुमान जी का स्वरुप हमारे हृदय में सदैव वास करे।*

ब्रजवासी हरि नंदलला का, पिय माँ जसुमति खंड हृदय का ।
बसें जो वृंदावन मैया का, वृषभानु सुता माता राधा का ।। (४)

भावार्थ: *ब्रजवासी नन्द के पुत्र भगवान् (श्री कृष्ण) जो मैया यशोदा के हृदय के टुकड़े हैं, वृषभानु पुत्री माँ राधा जो वृंदावन में वास करती हैं (उनका स्वरुप हमारे हृदय में बसे)।*

शेष नाग अवतार बलराम का, माँ सतरूपा देवी सुभद्र का ।
त्रिदेव ब्रह्मा विष्णु महेश का, कोटि तैतीस श्री देव देवी का ।। (५)

भावार्थ: *शेषनाग के अवतार बलराम जी, सतरूपा (अवतार) देवी सुभद्रा, त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश, तथा ३३ प्रकार के सभी देवी देवताओं का (स्वरुप हृदय में बसे)।*

करें नमन हम रथ यात्रा का, पावन हिय मोहिनी कथा का ।
मास आषाढ़ शुक्लपक्ष का, अति पावन द्वितीय तिथि का ।। (६)

भावार्थ: *हम अत्यंत पवित्र हृदय को मोहने वाली रथ यात्रा एवं आषाढ़ (मास) की शुक्ल पक्ष की द्वितीया (जिस दिन यह रथ यात्रा प्रारम्भ होती है) का नमन करते हैं।*

उत्सव महान श्री रथ यात्रा का, जगन्नाथ बलराम सुभद्र का ।
नव-दिवसीय पावन उत्सव का, नीलांचल गुण्डिचा मंदिर का ।। (७)

भावार्थ: *(भगवान्) जगन्नाथ, (श्री) बलराम , (माता) सुभद्रा की रथ यात्रा, (इस यात्रा के) नव दिवसीय उत्सव एवं नीलांचल गुंडिचा मंदिर (का नमन करते हैं)।*

निवास गुण्डिचा हरि का, संग बलराम बहन सुभद्र का ।
शुक्ल दशांश प्रस्थान का, आगमन गंडमंडल प्रभु का ।। (८)

भावार्थ: *प्रभु (जगन्नाथ) का अपने (भाई) बलराम (जी) एवं बहन सुभद्रा के साथ गुंडिचा में निवास एवं (आषाढ़ मास के) शुक्ल (पक्ष) दशमी को अपने (नित्य) मंदिर में लौटने का (हम नमन करते हैं)।*

तम विनासिनी श्रीकथा का, पतित पावन कल्प वृक्ष का ।
दे जो दर्श करुणामय देव का, श्री जगन्नाथ रथ यात्रा का ।। (९)

भावार्थ: *अंधकार (अज्ञान) विनासिनी, कल्प वृक्ष के समान पतितों को पवित्र करने वाली श्री जगन्नाथ रथ यात्रा जो हमें प्रभु के दर्शन कराती है (ऐसी कथा को हम नमन करते हैं)।*

दे कथा सुख इहलोका, मरण धाम साकेत प्रभु का ।
जय रथ यात्रा कथा का, धारें हिय हम हरि लीला का ।। (१०)

भावार्थ: *इहलोक में सुख देने वाली तथा मरण के पश्चात साकेत धाम में निवास देने वाली (मोक्ष देने वाली) इस रथ यात्रा कथा की जय हो। हम इस प्रभु की लीला को हृदय में धारण करते हैं।*

श्री कृष्ण का साकेत गमन

हुआ वर्ष सहस्त्र पञ्च पूर्व में, रण महाभारत सत्य असत्य में ।
मध्य अधर्मी सौ कौरव में, कृष्ण रक्षित पञ्च पाण्डु पुत्रों में ।। (११)

भावार्थ: *पांच सहस्त्र वर्ष पूर्व अधर्मी सौ कौरवों एवं भगवान् कृष्ण से रक्षित पांच पाण्डु पुत्रों में सत्य एवं असत्य के मध्य महाभारत युद्ध हुआ।*

सेना एकादस अक्षोहिणी, लड़ रही साथ असत्य निर्गुणी ।
अन्य ओर सप्त अक्षोहिणी, संग सेना सत पांडव गुणी ।। (१२)

भावार्थ: *एक ओर ११ अक्षोहिणी सेना अधर्मियों (कौरवों) का साथ दे रही थी, और दूसरी ओर (केवल) ७ अक्षोहिणी सेना धर्म रूपी पांडवों के साथ थी।*

थे कृष्ण सरंक्षक पांडवों के, बने निःशस्त्र सारथी अर्जुन के ।
थे प्रतीक विजय विभूति के, हेतु परिवत्सक पाण्डु विजय के ।। (१३)

भावार्थ: *(भगवान्) कृष्ण निःशस्त्र अर्जुन के सारथी बन पांडवों के सरंक्षक थे। पाण्डु पुत्रों की विजय विभूति के वह (भगवान् कृष्ण) प्रतीक थे।*

प्राप्त वीरगति सब कौरव, था माँ गांधारी दृश्य अति रौरव ।
हुईं क्रुद्ध वह कृष्ण सौरव, हो तुम कारण अंत मेरे गौरव ।। (१४)

भावार्थ: *(इस महाभारत युद्ध में) सभी कौरव वीरगति को प्राप्त हुए। यह दृश्य (उनकी) माता गांधारी के लिए असहनीय था। वह श्रेष्ठ कृष्ण पर अति क्रोधित होकर बोलीं कि तुम्हारे कारण ही मेरे वंश का गौरव नष्ट हुआ है (मेरे सभी पुत्र मारे गए)।*

जैसे हुआ अंत मेरे वंस का, होगा सलक्षण अंत यदुवंश का ।
शाप है यह शिव भक्तिन का, ना हो व्यर्थ सुन ईश द्वारका ।। (१५)

भावार्थ: *(गांधारी बोलीं) (हे कृष्ण) जैसे मेरे वंश का अंत हुआ, उसी प्रकार यदुवंश (भगवान् कृष्ण के वंश) का अंत भी होगा। यह शिव भक्तिन का श्राप हे कृष्ण सुन, निरर्थक नहीं जा सकता।*

हो गांधारी माँ मानित मेरी, धरूँ शीश मैं आज्ञा तेरी ।
बोले कृष्ण सुन शिव प्रेरी, नहीं त्रुटि माता कुछ मेरी ।। (१६)

भावार्थ: *भगवान् कृष्ण बोले, हे गांधारी माँ आप मेरे लिए अति सम्माननीय हैं। आपकी आज्ञा मैं स्वीकार करता हूँ। हे शिव भक्तिनी माँ, इसमें मेरी कोई त्रुटि नहीं थी।*

भोगें सब फल स्वयं कर्म का, जानो तुम यह तत्व विधि का ।
निश्चित यही अंत असत का, जानो यही विधान ईश्वर का ।। (१७)

भावार्थ: *(हे माँ) तुम तो प्रकृति का नियम जानती ही हो। अपने स्वयं के कर्मों का फल सबको भोगना पड़ता है। अधर्म का अंत इसी प्रकार होता है, ऐसा ईश्वर का विधान है।*

किए राज्याभिषेक युधिष्ठिर, लौटे द्वारका हरि श्रेष्ठकर ।
बीते छत्तीस वर्ष सुखकर, हुआ फलित शाप सुता गांधर ।। (१८)

भावार्थ: *(इसके पश्चात) युधिष्ठिर का राज्याभिषेक कर श्रेष्ठ प्रभु द्वारका लौट आए। ३६ वर्ष सुख पूर्वक बीत गए। तब गांधार पुत्री (गांधारी) के श्राप का असर हुआ।*

लेटे प्रभु दिन एक वृक्ष तल, करें विश्राम समीप समुद्र जल ।
रही चमक मणि पद तल, जरा बहेलिआ समझा मरुकल ।। (१९)

भावार्थ: *प्रभु (श्री कृष्ण) एक दिन समुद्र तट के समीप वृक्ष तले लेटे हुए थे। उनके पग तल में एक मणि चमक रही थी, जिसको जरा (नाम के) बहेलिए ने मृग (की आंख) समझा।*

मारो व्याध तीर शक्ति से, धारा रुधिर बही प्रभु पद से ।
त्यागे शरीर हरि सहज से, हुआ विषादित जरा कृत्य से ।। (२०)

भावार्थ: *बहेलिए ने पूर्ण शक्ति से (प्रभु के पग में) तीर मारा। प्रभु के पग से रुधिर की धारा निकल पड़ी। प्रभु ने तब सहजता से अपने शरीर का त्याग कर दिया। (इस अनजाने) कृत्य से जरा (बहेलिया) को बहुत दुःख हुआ।*

मिला सन्देश जब बलराम, गए धाम साकेत अभिराम ।
दौड़े तट सागर ले हरिनाम, बंधू विसारे तुम क्यों ग्राम ।। (२१)

भावार्थ: *जब (श्री) बलराम (जी) को यह सन्देश मिला कि प्रभु साकेत धाम पधार चुके हैं, तो वह उनका नाम लेते हुए समुद्र तट की ओर दौड़े (और बोले)हे भ्राता तुमने अपना (पृथ्वी) निवास क्यों छोड़ दिया।*

बहन सुभद्रा शोकाकुल, भागीं मिलन भ्राता हो आकुल ।
समाचार पाए सब यदुकुल, बहें नीर नयन द्वारका कुल ।। (२२)

भावार्थ: *बहन सुभद्रा शोकाकुल हो भाई से मिलने आकुलता से भागीं। जब अन्य यदुवंशीओं को यह समाचार मिला तो सबके नेत्रों से अश्रु धारा बह निकली।*

चन्दन काष्ठ धरो दिव्य को, दिए दाह प्रभु शरीर को ।
अर्पित प्रभु शव अग्नि को, न जला सकी वह तन को ।। (२३)

भावार्थ: *(तब) चन्दन लकड़ी (की शैया) पर दिव्य को रखा और उनके शरीर का दाह संस्कार किया गया। इस प्रकार प्रभु के शव को अग्नि को अर्पित किया गया, परन्तु (अग्नि) उनके दिव्य शरीर को नहीं जला सकी।*

अर्ध जलित प्रभु शरीरा, भरे बाहु बलराम महावीरा ।
ली समाधि जल वीरा, करें अनुसरण बहन सुभद्रा ।। (२४)

भावार्थ: *प्रभु के अर्ध जले हुए तन को तब (श्री) बलराम ने बाहों में भर लिया, और उन्हें लेते हुए जल समाधि ले ली। बहन सुभद्रा ने भी इस का अनुसरण किया (उन्होंने भी साथ में जल समाधि ले ली)।*

तैरें तीन शरीर सागर में, नहीं गले वह शतिक वर्ष में ।
पहुंचे तट भरु पूर्व देश में, आर्यावर्त कलिंग भूखंड में ।। (२५)

भावार्थ: *(इस प्रकार) तीन (मृतक) शरीर सागर में तैरने लगे। (प्रभु कृपा से) वह सौ वर्ष में भी नहीं गले। (बहते हुए) वह आर्यावर्त के कलिंग साम्राज्य, जो समुद्र के पूर्वी तट पर स्थित था, पहुँच गए।*

अब सुनो हरि लीला को, कैसे मिले प्रभु इन्द्रद्युम्न को ।
पतित पावन श्री कथा को, भवतारिन प्रभु लीला को ।। (२६)

भावार्थ: *अब उस प्रभु की लीला को सुनो कि कैसे भगवान् (सम्राट) इन्द्रद्युम्न को मिले। यह पतितों को तारने वाली भवतारिणी प्रभु लीला की अत्यंत पवित्र कथा है।*

प्रभु का सम्राट इन्द्रद्युम्न से मिलन

इन्द्रद्युम्न राजा उज्जैनी, धार्मिक अभीरु संत सम ज्ञानी ।
थीं गुंडिचा उनकी महारानी, थे विष्णु भक्त निःसंतानी ।। (२७)

भावार्थ: *(सम्राट) इन्द्रद्युम्न उज्जैन राज्य के अत्यंत धार्मिक, निडर संत समान ज्ञानी राजा थे। उनकी रानी का नाम (साम्राज्ञी) गुंडिचा था। (यह दोनों) भगवान् विष्णु के भक्त, संतानहीन थे।*

थे सम्राट पूर्ण आर्यवर्ता, राज्य मालवा कलिंग प्रसारिता ।
ना मद राज पाट वैभवता, हृदय रहे सदैव मग्न ईश्वरता ।। (२८)

भावार्थ: *वह पूर्ण आर्यवर्त के सम्राट थे। उनका साम्राज्य मालवा से कलिंग (प्रदेश) तक फैला हुआ था। उन्हें राज्य, वैभवता (आदि) का कोई अभिमान नहीं था। उनका हृदय सदैव ईश्वर में मग्न रहता था।*

थी इच्छा हो प्रभु के दर्शन, दिन रात विचारें यही भद्रजन ।
करें आदर सभी अतिथिगन, पूछें वह देश विदेश विद्वान ।। (२९)

भावार्थ: *उनकी इच्छा प्रभु दर्शन की थी। (प्रभु दर्शन कैसे हों) इसी पर वह दिन रात विचार करते रहते थे। देश विदेश से आए विद्वानों का अत्यंत आदर करते हुए उनसे यही प्रश्न पूछते थे।*

आए एकदा अतिथि संतन, थे किए हुए नीलमाधव दर्शन ।
करें गुणगान विग्रह वर्पन, चतुर्भुज दिव्य रूप हरि मधुरन ।। (३०)

भावार्थ: *एक बार (कुछ) अतिथि रूप में संत आए जिन्होंने (भगवान्) नील माधव के दर्शन किए हुए थे। उनके चतुर्भुज सुन्दर दिव्य मूर्ति रूप का वह गुणगान कर रहे थे।*

पूछे राजन ठौर कहाँ भगवन, जानें न निश्चित स्थान संतन ।
थी इच्छा गहन हरि मिलन, संकल्पित खोजूं प्रभु निवासन ।। (३१)

भावार्थ: *राजा ने (उन संतों से) पूछा कि प्रभु का निवास कहाँ है? संतो को उनका नित्य स्थान पता नहीं था। राजा की हरि से मिलने की तीव्र इच्छा हुई और उन्होंने उनका निवास स्थान ढूंढने का संकल्प लिया।*

दिए आदेश पुरोहितजन, चहुं ओर ढूंढो श्री निवासन ।
त्रिमास अविधि रहे स्मरन, करो कठोर प्रयस प्रयत्न ।। (३२)

भावार्थ: उन्होंने सभी पुरोहितगणों को आदेश दिया कि चहुँ ओर जाकर प्रभु को ढूंढो। तीन मास की अवधि का स्मरण रखो (अतः तीन महीनों में उनका पता लगाएं। कठोर परिश्रम से प्रयत्न करो।

सुनो प्रमुख पुरोहित तनय, विद्याधर तुम समर्थ अनन्य ।
है पूर्ण भरोसा मेरे हृदय, सफल अवश्य खोजो स्थापय ।। (३३)

भावार्थ: *(सम्राट ने मुख्य आचार्य के पुत्र विद्याधर से कहा) हे मुख्य आचार्य पुत्र विद्याधर सुनो, तुम अत्यंत निपुण हो। मेरे हृदय में पूर्ण विस्वास है कि तुम अवश्य ही (प्रभु का) स्थान ढूंढने में सफल होंगे।*

प्रस्थान किए सब पुरोहितगण, ढूंढें हरि हर ओर धुवन ।
मिले न कहीं हरि रमण, लौटे निराश सभी मान्यगण ।। (३४)

भावार्थ: *(तब) सभी पुरोहितगणों ने प्रस्थान किया। वह प्रभु का स्थान हर ओर ढूँढ़ने लगे। उन्हें कहीं भी प्रभु निवास नहीं मिला। निराश होकर सभी मान्यगण लौट आए।*

केवल विद्याधर नहीं आए, न जाएं उज्जैन बिन खोज पाए ।
वह तट पूर्व सिंधु पर आए, देख अति सुन्दर गाँव हुलसाए ।। (३५)

भावार्थ: *केवल विद्याधर (वापस) नहीं आए। (उन्होंने ऐसा संकल्प किया) वह (प्रभु का) स्थान खोजे बिना उज्जैन नहीं जाएंगे। (ढूंढते ढूंढते) वह समुद्र के पूर्वी तट पर (कलिंग प्रदेश) आए। वहांअति सुन्दर एक ग्राम देख उन्हें बड़ी प्रसनता हुई।*

करें विचार रात्रि विश्राम का, पूछें निवासी अर्थ्य स्थान का ।
अतिथि-गृह ग्राम मुखिया का, है उपयुक्त इदम विश्राम का ।। (३६)

भावार्थ: *रात्रि विश्राम करने के विचार से उन्होंने एक (ग्राम) निवासी से स्थान पूछा (जहां वह रात्रि विश्राम कर सकें)। (तब उस निवासी ने कहा) (हे) अतिथि, ग्राम प्रमुख का घर आपके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान होगा।*

नाय जाति सबर विश्वावसु, धार्मिक विनम्र उदार प्रियसु ।
गए तब विद्याधर घर वसु, मिलीं द्वार तनया विश्वावसु ।। (३७)

भावार्थ: *सबर जाति (एक वन जाति) के प्रमुख विश्वावसु अत्यंत धार्मिक, उदार, विनम्र एवं प्रसन्नचित्त व्यक्ति थे। तब विद्याधर उन महानुभाव के घर पहुंचे। गृह द्वार पर उन्हें विश्वावसु की पुत्री मिलीं।*

ललिता नाम सुघड़ कन्या, बोली अतिथि वचन मधुरन्या ।
पिता गए स्थान हैं अन्या, करो प्रतीक्षा बैठ गृह बहिन्या ।। (३८)

भावार्थ: *(विश्वावसु की पुत्री) ललिता नाम की संस्कारी कन्या थीं। वह अतिथि से मधुर वचन बोलीं कि पिताजी (किसी) अन्य स्थान पर गए हुए हैं। आप घर के बाहर बैठकर उनकी प्रतीक्षा कीजिए।*

बीते कुछ पल इस प्रकार, आए तब पिता अति उदार ।
मांगे आगत क्षमा कई बार, किये वह विद्याधर सत्कार ।। (३९)

भावार्थ: *कुछ पल बीतने के पश्चात्त अति उदार पिता (विश्वावसु आए। (अतिथि को घर के बाहर बैठे हुए देख) उन्होंने बार बार (विद्याधर से) क्षमा माँगी। तब विद्याधर का उन्होंने अति सत्कार किया।*

थी विश्वावसु देह सुगन्धित, ललाट पर तिलक शोभित ।
हुए देख विद्याधर विस्मित, चाहा छू लूँ चरन दिवयित ।। (४०)

भावार्थ: *विश्वावसु की देह अति सुगन्धित थी। उनके मस्तिष्क पर तिलक शोभायमान हो रहा था। यह देखकर विद्याधर आश्चर्य चकित हो गए। उनके हृदय ने चाहा कि इस दिव्य पुरुष के वह चरण स्पर्श कर लें।*

किया विचार हैं यह सबर, पुत्र ब्राह्मण नहीं उचितकर ।
बोले तब आतिथेय भद्रवर, है स्वागत अतिथि मेरे घर ।। (४१)

भावार्थ: *(फिर) विचार किया कि यह सबर (जन जाति) से हैं और मैं एक ब्राह्मण पुत्र। ऐसा करना (चरण छूना) उचित नहीं होगा। (इतने में) आतिथेय (विश्वावसु) बोले, हे अतिथि आपका स्वागत है।*

कियो नमन श्री विद्याधर, ब्राह्मण-पुत्र उज्जैन निवासकर ।
दें आज्ञा यदि मान भद्रवर, करूँ विश्राम यहां रात्रि भर ।। (४२)

भावार्थ: *विद्याधर ने उन्हें नमन किया (और अपना परिचय दिया)। मैं उज्जैन निवासी एक ब्राह्मण-पुत्र हूँ। मान्यवर, अगर आपकी आज्ञा हो तो मैं यहां रात्रि विश्राम करूँ।*

श्री विश्वावसु हुए प्रभावित, समझो गृह स्वयं अधिकारित ।
है स्वागत कामग नमसित, रहो जब तक हिय अव्यति ।। (४३)

भावार्थ: *विश्वावसु (विद्याधर कि व्यक्तोतव से) प्रभावित हुए और बोले, इसे अपना ही घर समझो। हे आगंतुक, आपका स्वागत है। जब तक हृदय चाहे, रहो।*

दिए आदेश वह स्व-पुत्री, ललिता करो प्रबंध सुमित्री ।
दो भोज अत्यंत रम्यत्री, हैं यह पूजित सम ऋषि अत्री ।। (४४)

भावार्थ: *तब (विश्वावसु) उन्होंने अपनी पुत्री को आदेश दिया। ललिता, सुमित्र (के ठहरने) का प्रबंध करो। इन्हें स्वादिष्ट व्यंजन दो। यह हमारे लिए ऋषि अत्री समान पूज्यनीय हैं।*

था गृह विश्वावसु सुगन्धित, दिव्य मधु सम इत्र संचरित ।
न देखा सुना अया आयुत, है क्या रहस्य सोचें विस्मित ।। (४५)

भावार्थ: *विश्वावसु का गृह मधुर दिव्य इत्र समान सुगंध से सुगन्धित था। (विद्याधर) आश्चर्यचकित हो सोचने लगे कि ऐसे सुगन्धित मिश्र, जिसके बारे में न कभी सुना है, न देखा है, का रहस्य क्या हो सकता है?*

रहूँ मैं यहां कुछ दिवसा, है संभव मिलें नीलमाधव ईसा ।
प्रद्रशित हर दिन विशेषा, जाएं विश्वावसु अज्ञात निर्गसा ।। (४६)

भावार्थ: *(विद्याधर ने सोचा) मैं यहां कुछ दिन रहूँ। हो सकता है कि नीलमाधव प्रभु मिल जाएं। उन्हें एक विशेषता दिखाई दी। विश्वावसु प्रति दिन किसी अज्ञात स्थान को जाते थे।*

लौटें जब अनजान पौण्यशा, हिय अति प्रसन्न सबर नरेशा ।
सुगन्धित तन हृदय वरिवसा, रटें मुख अविरत नाम सुरेशा ।। (४७)

भावार्थ: *जब इस अनजान स्थान से सबर नरेश (विश्वावसु) लौटते थे तो उनका हृदय अति प्रसन्न होता था। सुगन्धित शरीर एवं प्रफ्फुलित हृदय से लगातार प्रभु का नाम रटते रहते थे।*

बीते दिन कुछ इसी प्रकारा, करें सेवा ललिता ब्रह्मारा ।
हुई द्वि-किशोर अनुरति, ली विवाह विद्याधर अनुमति ।। (४८)

भावार्थ: *इसी प्रकार कुछ दिन बीत गए। ललिता ब्राह्मण पुत्र की सेवा करती रहीं। उन दोनों युवाओं में तब प्रेम हो गया। विद्याधर ने विवाह की अनुमति ली।*

दी सहमति पितृ पानिग्रहन, सबर नरेश विश्वावसु पावन ।
हुआ विवाह तब महस्विन्, बने विद्याधर घर जामातन ।। (४९)

भावार्थ: *पिता सबर नरेश पावन विश्वावसु ने विवाह की सहमति दी। तब श्रेष्ठ युवाओं का विवाह हुआ। विद्याधर घर-जमाई बन गए।*

पूछे भर्ता पत्नी एक दिन, जाएं कहाँ श्रीश्वसुर प्रतिदिन ।
ना जानें ललिता कारन, है अवश्य तथ्य कोई अभेदन ।। (५०)

भावार्थ: *एक दिन पति (विद्याधर) ने पत्नी (ललिता) से पूछा, श्वसुर जी प्रतिदिन कहाँ जाते हैं? ललिता को इसका कारण ज्ञात नहीं था। अवश्य ही कोई गुप्त रहस्य होगा।*

करे प्रयास कई बारा, पूछा पिता जाएं कहाँ कुब्रा ।
रहे उदास वह हर बारा, जान ना सकूं तथ्य गहरा ।। (५१)

भावार्थ: *(ललिता बोली) मैंने पिता से कई बार पूछने का प्रयास किया कि वह वन में कहाँ जाते हैं। हर बार पिता चुप ही रहे। मैं इस गहन तथ्य को नहीं जान सकी।*

किए विनती तब भर्ता, है प्राणप्रिय हृदय उत्सुकता ।
करूँ विनती पूछो पिता, होए आभार सदैव रागवता ।। (५२)

भावार्थ: *तब पतिदेव ने विनती की, हे प्राणप्रिय मेरे हृदय में अत्यंत उत्सुकता है (यह जानने की कि श्वसुर जी वन में कहाँ जाते हैं। उन्हें ऐसा आभास हो रहा कि वह अवश्य ही भगवान् नील माधव को जानते हैं, और उनके दर्शन हेतु वन में जाते हैं)। आप पिता से पूछो। हे प्रिये, यह आभार सदैव रहेगा।*

पिघला तब हिय ललिता, की हठ जाओ कहाँ वन पिता ।
है यह भेद गहन सुता, जाऊं मैं पूजन प्रभु श्री अच्युता ।। (५३)

भावार्थ: *(पति की बातों से) ललिता का हृदय पिघल गया। उन्होंने पिता से हठ की कि वह (बताएं) वन में कहाँ जाते है? (पिता बोले) हे पुत्री, यह अत्यंत गहन रहस्य है। मैं वहां भगवान् श्री अच्युत की स्तुति करने जाता हूँ।*

नीलमाधव श्री भगवंता, कही जनयित्र बस इतनी वार्ता ।
विद्याधर सुनी यह सत्यता, मन प्रसन्न मिलें अब मरुता ।। (५४)

भावार्थ: *(पिता आगे बोले) वह नीलमाधव भगवान् हैं। पिता की (पुत्री से) यह वार्ता विद्याधर ने सुनी। उनका मन इस सत्य को जानकर अत्यंत प्रसन्न हुआ। अब अवश्य ही भगवान् (नील माधव) मिलेंगे।*

की विनती पत्नी ललिता, लो आज्ञा जा सकें संग भर्ता ।
पड़ी पित तब चरन सुता, चाहें करन दर्श श्री जमाता ।। (५५)

भावार्थ: *तब पत्नी ललिता से (पतिदेव ने) विनती की। उन (पिता) से पति को साथ ले जाने की आज्ञा लो। तब पुत्री अपने पिता के चरण पड़ गईं, (और बोलीं) आपके जमाई (प्रभु के) दर्शन करना चाहते हैं।*

लो संग उन्हें तुम अपने, हरि दर्शन सों पूरन सपने ।
दी नहीं अनुज्ञा पिता ने, किया व्रत निर्जला सुता ने ।। (५६)

भावार्थ: *(ललिता पिता से बोलीं) उन्हें (मेरे पति को) आप अपने साथ लीजिए ताकि प्रभु के दर्शन से उनके स्वप्न पूर्ण हों। पिता ने इसकी अनुमति नहीं दी। तब पुत्री ने निर्जला (आमरण) व्रत किया।*

त्यागूँ प्राण न करूँ भोजन, हों न अगर पति हरि दर्शन ।
पुत्री हठ झुके जनयित्रन, लूँ साथ मगर बाँधू मैं नेत्रन ।। (५७)

भावार्थ: *(ललिता बोलीं) अगर मेरे पति को प्रभु के दर्शन नहीं हुए तो मैं भोजन नहीं करूंगी, प्राण त्याग दूंगी। पुत्री की हठ के आगे पिता झुक गए। (वह बोले) मैं साथ ले जाऊँगा ,लेकिन इनके नेत्र बाँध दूंगा।*

देख न सकें मार्ग जमाता, यही विधि जा सकें मान्यता ।
दी स्वीकृति शर्त सुता, पर हुए अति विचलित श्री भर्ता ।। ५८)

भावार्थ: *(पिता बोले) ताकि जमाई मार्ग न देख सकें। इसी शर्त पर मैं माननीय को (अपने साथ हरि दर्शन हेतु) ले जा सकता हूँ। पुत्री ने तो यह शर्त स्वीकार कर ली, लेकिन पतिदेव (विद्याधर) अत्यंत विचलित हो गए।*

कैसे जानूं मार्ग प्रभु का, कैसे कराऊँ नृप दर्श हरि का ।
सुना विचार तब पत्नी का, दीं उपाय इस उलझन का ।। (५९)

भावार्थ: *(विद्याधर ने पत्नी ललिता से कहा) मैं प्रभु (निवास) का मार्ग कैसे जान पाऊँगा? मैं सम्राट को प्रभु के दर्शन कैसे करा पाऊँगा? तब पत्नी (ललिता) का इस उलझन का उपाय बताते हुए विचार सुना।*

बीज सरिश एक पटक, दिए पति बाँध गुप्त रीतक ।
डालो दाना तुम भूमक, उपजें वर्ष ऋतू यह बीजक ।। (६०)

भावार्थ: *एक पोटली मैं बांधकर गुप्त रीति से उन्होंने सरसों के बीज दे दिए, (और कहा) तुम इसके दानों को भूमि पर डालते जाना । वर्षा ऋतु मैं यह उपज जाएंगे (और मार्ग दर्शन करेंगे)।*

प्रातः चले विश्वावसु सज्जन, बाँधी पट्टी विद्याधर नयन ।
चले बैठे शकट तब द्विजन, डालें सरिश मार्ग जामातन ।। (६१)

भावार्थ: *प्रातः सज्जन (पुरुष) विश्वावसु (प्रभु से मिलने) चले। उन्होंने विद्याधर के नेत्रों पर पट्टी बाँध दी। दोनों बैलगाड़ी पर सवार होकर चले। मार्ग मैं जमाई (गुप्त रूप से) सरसों (के बीज) डालते गए।*

पहुंचे शीघ्र हरि मंदिर में, थी माधव नील मूर्ति अग्र में ।
मोहित हुए प्रभु विग्रह में, था शंख गदा चक्र भुजा में ।। (६२)

भावार्थ: *शीघ्र ही वह (दोनों) प्रभु के मंदिर पहुंच गए। नीलमाधव की प्रतिमा उनके समक्ष थी। प्रभु की मूर्ति देखकर (विद्याधर) मोहित हो गए। उनके हस्त मैं शंख, गदा, चक्र (इत्यादि) सुशोभित थे।*

चतुर्भुज रूप हरि था सुखद, देख विद्याधर हुए रुदित ।
बोले विश्वावसु हे जमाता, जाऊं अटव संग्रह पुष्प पाता ।। (६३)

भावार्थ: *प्रभु का चतुर्भुज रूप अति सुखदायी था। (प्रभु के दर्शन से) विद्याधर रोने लगे (प्रभु प्रेम के अश्रु उनके नयनों से बहने लगे)। (तब) विश्वावसु बोले, हे जमाई मैं वन पत्र पुष्प लेने जा रहा हूँ (प्रभु की पूजा हेतु)।*

करेंगे हम पूजन भगवंता, तदुपरांत प्रस्थान अस्तता ।
गए तब अटव मानिता, करें प्रतीक्ष विद्याधर जमाता ।। (६४)

भावार्थ: *(पत्र पुष्प से) हम प्रभु की पूजा करेंगे। तद्पश्चात घर को प्रस्थान करेंगे। यह कहकर मान्यवर (विश्वावसु) वन को चले गए। जमाई विद्याधर उनकी प्रतीक्षा करने लगे।*

मंदिर सुन्दर सवेश सरोवर, गूंजे भोरें पुष्प पद्म पर ।
कूजित खग वृक्ष पर, विटप आम्र शोभित जल पर ।। (६५)

भावार्थ: *सरोवर के तट पर यह मंदिर अत्यंत सुन्दर था। (सरोवर के अंदर) कमल पुष्प पर भौंरे गुंजन कर रहे थे। वृक्ष पर पक्षी चहचहा रहे थे। आम्र (वृक्ष) की शाखा (सरोवर) जल पर अत्यंत शोभायमान थी।*

देखे विद्याधर एक कागा, जल समाधि ले वह सुभागा ।
हुए प्रगट गरुड़ नियोगा, बैठ पंख वह गया सुरागा ।। (६६)

भावार्थ: *(तभी) विद्याधर ने एक काग को देखा। उस भाग्यशाली ने (उनके नेत्रों के समक्ष) जल समाधी ले ली। तभी नियोगी गरुड़ (भगवान् विष्णु के वाहन) प्रगट हो गए। उनके पंख पर बैठकर वह स्वर्ग चला गया।*

है काग कितना सौभागी, था ना भक्त तपी ना योगी ।
मांसाहार अपवित्र खगी, हो स्पर्श सरोवर सों स्वर्गी ।। (६७)

भावार्थ: *(विद्याधर सोचने लगे) यह काग कितना भाग्यशाली है। न तो यह भक्त है, न तपस्वी और न ही योगी। यह तो मांसाहारी अपवित्र पक्षी है। इस (पवित्र) सरोवर के स्पर्श (मात्र) से यह स्वर्ग चला गया।*

विचार किए तब विद्याधर, लूँ समाधि मैं इस सरोवर ।
पाऊँ मैं ब्रह्म सहजकर, चढ़े वह वृक्ष यह सोचकर ।। (६८)

भावार्थ: तब विद्याधर विचार करने लगे कि मैं भी इस सरोवर के अंदर समाधि ले लूँ। सहज ही मुझे ब्रह्म की प्राप्ति हो जाएगी (मैं स्वर्ग पहुँच जाऊँगा)। यह सोचकर (जल समाधि लेने हेतु) वह वृक्ष पर चढ़ गए।

हुए कूदने को वह तत्पर, लें समाधि सरस शीघ्रकर ।
सुने तब वह गगन स्वर, है आत्मवध घोर पापकर ।। (६९)

भावार्थ: *जैसे ही वह जल समाधि लेने हेतु कूदने को तत्पर हुए, तभी एक आकाशवाणी हुई। आत्महत्या करना घोर पाप है।*

न करो स्वघात लोभ में, पा लोगे बैकुंठ सहज में ।
धरो धैर्य संयम हिय में, होगी मुक्ति उचित समय में ।। (७०)

भावार्थ: *(आकाशवाणी बोली) इस लोभ में कि तुम्हें स्वर्ग की प्राप्ति सहजता से प्राप्त हो जाएगी, आत्म-हत्या नहीं करो। हृदय में थोड़ा संयम रखो। उचित समय पर तुम्हें मोक्ष मिलेगा।*

जाओ तुम अब रजधानी, सूचित करो महाराज कहानी ।
आएं नीलमाधव निवासनी, करें नृप इच्छा पूर्ण सुहानी ।। (७१)

भावार्थ: *(आकाशवाणी बोली) अब तुम राजधानी (उज्जैन) जाकर महाराज (इन्द्रद्युम्न) को कथा सुनाओ। वह अपनी सत इच्छा पूर्ण करने नील माधव (हरि) के निवास स्थान पर आएं।*

तभी लौटे श्री विश्वावसु, लिए साथ पुष्प पात द्रव्यसु ।
कीन्हीं पूजा द्वि-मनीषु, किए प्रसन्न नीलमाधव वसु ।। (७२)

भावार्थ: *तभी विश्वावसु पत्र पुष्प (इत्यादि) सामग्री लेकर (वन से) वापस आ गए। दोनों पुरुषों ने तब नील माधव (प्रभु) को पूजा से प्रसन्न किया।*

हुए हिय प्रसन्न जामाता, देख श्वसुर भक्ति भगवंता ।
लौटे गृह समापन मन्मता, बाँधी पट्टी नेत्र विवाह्यता ।। (७३)

भावार्थ: *श्वसुर (विश्वावसु) की प्रभु भक्ति देख जमाई (विद्याधर) हृदय में प्रसन्न हुए। पूजा की समाप्ति के पश्चात (दोनों) गृह लौटे। (लौटते समय) जमाई के नेत्रों पर (विश्वावसु ने) पट्टी बांध दी।*

बीते कुछ दिन शमपूर्वक, बोले विद्याधर तब नैतिक ।
हूँ दिवस बहु गृह दूरक, दो आज्ञा मिलूं सब दायक ।। (७४)

भावार्थ: *कुछ दिन शांतिपूर्वक बीते। तब विनम्रता से विद्याधर (विश्वावसु से) बोले। बहुत दिनों से मैं अपने (पैतृक) घर से दूर हूँ। आप आज्ञा दें तो मैं अपने परिवार से मिल आऊं।*

ले आज्ञा श्वसुर और पत्नी, आए वह अवन्ती राजधानी ।
मिले नृप कही कहानी, इन्द्रद्युम्न सुन हिय सुखानी ।। (७५)

भावार्थ: *श्वसुर और पत्नी से आज्ञा ले तब वह अवन्ती (प्रदेश) राजधानी (उज्जैन) आए। वहां सम्राट (इन्द्रद्युम्न) से मिले एवं भगवान् नील माधव) से मिलन की कथा सुनाई। (कथा सुनकर) इन्द्रद्युम्न का हृदय प्रसन्नता से भर गया।*

नहीं कारण करें अब देरी, करें दर्शन तुरंत प्रियेरी ।
दिए तब आज्ञा ध्वजेरी, चले इन्द्रद्युम्न संग सब चेरी ।। (७६)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले) अब देरी करने का कोई कारण नहीं है। तुरंत सेना को (कलिंग प्रदेश) चलने की आज्ञा दी। (महाराज) इन्द्रद्युम्न ने अपने सभी प्रियजनों के साथ कूच किया।*

वर्षा ऋतु अति सुहावनी, पहुंचे नृप विश्वावसु ग्रामनी ।
पीत सरिस पुष्प शोभनी, मिला मार्ग हरि प्रवासनी ।। (७७)

भावार्थ: *वर्षा ऋतु का सुहावना समय था जब सम्राट (इन्द्रद्युम्न) विश्वावसु के ग्राम पहुंचे। सरसों के पीले पुष्प सुशोभित हो रहे थे, (उनकी मदद से) प्रभु के प्रवास का मार्ग मिल गया (प्रभु नील माधव मंदिर का मार्ग मिल गया)।*

पहुंचे मंदिर मानवेन्द्र, पर नहीं देखे वहां देवेंद्र ।
करें विलाप घोर नृपेंद्र, दो दर्शन तुरंत हे सुरेंद्र ।। (७८)

भावार्थ: *सम्राट (नील माधव हरि के) मंदिर पहुंचे, परन्तु वहां प्रभु नहीं थे। ((प्रभु के दर्शन न होने के कारण) नृप घोर विलाप करने लगे और प्रभु से दर्शन देने की प्रार्थना करने लगे।*

करूँ मैं निर्जला व्रत, पाऊँ नहीं दर्श यदि प्रीतिमत ।
त्यागूँ प्राण मैं हे सुखमत, लक्ष्य नहीं रहूँ अब जीवत ।। (७९)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न ने संकल्प लिया) मैं निर्जला व्रत रखूंगा। अगर प्रिय (प्रभु) के दर्शन नहीं हुए तो मैं प्राण त्याग दूंगा। (प्रभु के दर्शन बिना) मेरे जीवन का अब कोई लक्ष्य नहीं है।*

सुना तब एक वचन गगन, सुनो सुनो हे भक्त राजन ।
विलोपित अविगत वर्पन्, नीलमाधव स्वरुप भगवन ।। (८०)

भावार्थ: *तभी आकाशवाणी हुई। हे राजन सुनो, वर्तमान भगवान् नीलमाधव का स्वरुप विलुप्त हो गया है।*

होऊं रूप जगन्नाथ प्रगट, करो प्रतीक्षा बंकिम तट ।
बह रहे त्रि-शव सरिद्वट, दारु-ब्रह्म काष्ठ दलिकट ।। (८१)

भावार्थ: *अब मैं जगन्नाथ रूप मैं प्रगट होऊंगा। (समुद्र के) बंकिम तट पर मेरी प्रतीक्षा करो। वहां तुम दारु-ब्रह्म स्वरुप लकड़ी के रूप में तीन शवों को बहते पाओगे।*

छोड़ा शरीर द्वारका में, तन कृष्ण बलराम सुभद्रा में ।
आए हम तट बंकिम में, स्वरूप दारु-ब्रह्म गुहिन में ।। (८२)

भावार्थ: *कृष्ण, बलराम और सुभद्रा (तीनों ने) के रूप में अपने शरीर को द्वारका में त्यागकर हम बंकिम तट पर दारु-ब्रह्म काष्ठ स्वरुप में आए हैं।*

जाओ तुम तट सागर, है बह रहा काष्ठ खंड आगर ।
शंख चक्र पद्म व् मुद्गर, इंकित हैं चिन्ह ईश नागर ।। (८३)

भावार्थ: *तुम सागर तट पर जाओ । लकड़ी का लट्ठा (वहां) बह रहा है। हे सम्राट, उस पर शंख, चक्र, कमल, गदा (इत्यादि) के निशान अंकित हैं।*

निकालो गुहिन खंड को, रचो तब चतुर्विग्रह को ।
दो आकृति मंदिर को, करो स्थापित चक्रतीर्थ को ।। (८४)

भावार्थ: *काष्ठ के लट्ठे को निकालो और इससे चार मूर्तियां (जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा एवं सुदर्शन चक्र) बनाओ। एक मंदिर का निर्माण करो और उसमें इन चार मूर्तियों को स्थापित करो।*

सुनी नभ वानी महाराजा, गए तट सागर संग समाजा ।
देखा वहां विशाल स्थूलजा, हो रहा था प्रगट समुद्रजा ।। (८५)

भावार्थ: *आकाशवाणी सुन नरेश अपने समाज के साथ समुद्र तट पर गए। वहां उन्होंने विशाल काष्ठ खंड देखा जो समुद्र के अंदर से प्रगट हो रहा था।*

निकाला तब काष्ठ खंड को, करें नमन धर्म चिन्हों को ।
किए विग्रह जगन्नाथ को, बलदेव सुभद्रा सुदर्शन को ।। (८६)

भावार्थ: *तब उन्होंने इस काष्ठ के लट्ठे को निकाला। उस पर अंकित धर्म चिन्हों को नमन किया। जगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा एवं सुदर्शन (चक्र) की मूर्तियां बनवाईं।*

कीं स्थापित सब मूरत, मंदिर विशाल किया निर्मित ।
रखा एक कलस शिखरत, किया संग चक्र सुशोभित ।। (८७)

भावार्थ: *एक विशाल मदिर का निर्माण कर उन सब मूर्तियों को (मंदिर में) स्थापित किया। (मंदिर के) शिखर पर (सुदर्शन) चक्र के साथ कलश सुशोभित हो रहा था।*

गए तब नृप ब्रह्मलोक, किए वह आत्मभू आलोक ।
की विनती चलें भूलोक, करें प्रतिष्ठा ईश विश्वलोक ।। (८८)

भावार्थ: *तब नृप (इन्द्रद्युम्न) ब्रह्मलोक गए और ब्रह्मदेव के दर्शन किए। उनसे पृथ्वी पर आकर विश्व के स्वामी भगवान् को प्रतिष्ठापित करने की विनती की।*

बोले पितामह इन्द्रद्युम्न, है आदेश स्वयं माधवद्युम्न ।
करूँ प्रतिष्ठित ब्रह्मदयुम्न, आऊं मैं भूलोक नरदयुम्न ।। (८९)

भावार्थ: ब्रह्मदेव बोले, हे इन्द्रद्युम्न, स्वयं (हरि) विष्णु का आदेश है कि मैं उन्हें प्रतिष्ठापित करूँ। अतः हे नृप, मैं भूलोक आऊँगा।

दी आज्ञा तब ब्रह्म आलोक, नृप लौटो तुम भूलोक ।
निमंत्रण दो सबलोक, संत विभूति नृपाल इहलोक ।। (९०)

भावार्थ: *हे नृप, अब तुम मेरा आदेश स्वीकार कर पृथ्वी लोक पर लौटो। सभी पृथ्वी के महामान्यगण, नरेश, एवं संतो को (इस अवसर पर पधारने का) निमंत्रण दो।*

आए नृप तब पृथ्वी पर, सुमरित जगन्नाथ हिय पर ।
लौटे थे सहस्त्र वर्ष पर, गालमाधव नृप तब भू पर ।। (९१)

भावार्थ: *तब नृप (इन्द्रद्युम्न) हृदय में (भगवान्) जगन्नाथ का स्मरण करते हुए पृथ्वी पर लौट आए। उन्हें (पृथ्वी पर) लौटने में एक सहस्त्र वर्ष लग गए। उस समय पृथ्वी पर (सम्राट) गालमाधव का शासन था।*

विशेष: *ब्रह्मलोक के कुछ पल ही भूलोक के एक सहस्त्र वर्ष के बराबर होता है। यद्यपि सम्राट इन्द्रद्युम्न ने ब्रह्मलोक में कुछ पल ही बिताए थे, परन्तु वह पृथ्वी लोक के एक सहस्त्र वर्ष के बराबर थे।*

सुनो कथा विग्रह क्षदन, कहें तब वार्ता प्रतिष्ठापन ।
है पतित पावन कथन, जो दे हृदय अति प्रमोदन ।। (९२)

भावार्थ: *इससे पूर्व कि विग्रह प्रतिष्ठापना की वार्ता करें, विग्रह के तराशने कथा सुनो। ये कथा पतितों को पवित्र करने वाली एवं हृदय को आनंद देने वाली है।*

विग्रह क्षदन कथा

सुनी इन्द्रद्युम्न नभ वानी, हैं तट बंकिम अकूपारनी ।
रुप काष्ठ श्री चक्रपानी, पहुंचे वहां तब नृप सम्मानी ।। (९३)

भावार्थ: *समुद्र के बंकिम तट पर काष्ठ स्वरुप में प्रभु हैं, आकाशवाणी से (सम्राट) इन्द्रद्युम्न ने सुना। तब सम्माननीय सम्राट वहां पंहुचे।*

था काष्ठ खंड वहीं पर, चाहें रखें उचित स्थल पर ।
करें प्रयास समन्विवर, न उठे वह किसी शूरवर ।। (९४)

भावार्थ: *वह काष्ठ का लट्ठा वहीं पर था। उसे उचित स्थान पर रखना चाहा (उसे समुद्र से निकालना चाहा)। सभी उपस्थितगण प्रयास करने लगे, लेकिन वह (लट्ठा) किसी से नहीं उठा।*

सुना तब एक गगन स्वर, संभव विश्वावसु विद्याधर ।
संग में ललिता भाग्यवर, उठाएं यह काष्ठ खंडकर ।। (९५)

भावार्थ: *तभी एक आकाशवाणी हुई। इस काष्ठ लट्ठे को उठाना तभी संभव है जब भाग्यशाली विश्वावसु, विद्याधर एवं ललिता साथ में उठाएं।*

हुए विस्मित यह सुनकर, करें स्मरण नरेश मित्रवर ।
भेजी सेना तुरित नृपवर, ग्राम वसु सबर नायकर ।। (९६)

भावार्थ: *यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गए। सम्राट को अपने मित्रगणों का स्मरण हो आया। सम्राट ने तुरंत सबर प्रमुख विश्वावसु के ग्राम उनको बुलाने के लिए सेना भेजी ।*

सुनी जब आज्ञा नरेश की, ली तुरंत विश्वावसु पालकी ।
नहीं थी सीमा सुख की, विद्याधर ललिता हरि प्रेम की ।। (९७)

भावार्थ: *जब नरेश की (सेना द्वारा) आज्ञा सुनी, विश्वावसु ने तुरंत पालकी मंगाई। विद्याधर और ललिता के प्रभु प्रेम के सुख की कोई सीमा नहीं थी।*

पहुंचे शीघ्र स्थान पर, पड़े पग नृप इन्द्रद्युम्न पर ।
रथ स्वर्ण था तट पर, रखे काष्ठ इस दिव्य रथ पर ।। (९८)

भावार्थ: *वह (तीनों) शीघ्र ही स्थान पर पहुँच गए (समुद्र के बंकिम तट पर पहुँच गए)। वह सम्राट इन्द्रद्युम्न के चरणों में गिर पड़े (उनका अभिवादन किया। तट पर एक स्वर्ण रथ खड़ा हुआ था। उन्होंने इस काष्ठ को इस दिव्य रथ में रख दिया।*

चला रथ उस स्थल को, स्थान पूर्व्य गंडमंडल को ।
उतारे खंड काष्ठ को, करें आमंत्रित मूर्तिकार को ।। (९९)

भावार्थ: *रथ उस स्थल को चल दिया जहां मंदिर बनाने की योजना थी। उन्होंने (तीनों ने) तब काष्ठ के लट्ठे को उतारा। (इस काष्ठ लाते से मूर्तियां बनाने के लिए) मूर्तिकारों को आमंत्रित किया गया।*

करें प्रयास बनें विग्रह, टूटें उपकरण होवे निग्रह ।
आए तब एक सुग्रह, ब्राह्मण स्वरूप करें अनुग्रह ।। (१००)

भावार्थ: *(मूर्तिकार) मूर्तियां बनाने के प्रयास करने लगे। लेकिन अनेक अवरोध होने लगे। उनके उपकरण टूटने लगे। तभी एक सुघड़ (व्यक्ति) ब्राह्मण स्वरुप में आए और विनती करने लगे।*

है मेरा नाम महाराणा, हूँ मैं ब्राह्मण पुत्र सुराणा ।
शिल्पकार हूँ सयाणा, करूँ क्षदन मूर्ति रम्यणा ।। (१०१)

भावार्थ: *(वह ब्राह्मण बोले) मैं उच्च कुल का ब्राह्मण पुत्र हूँ। मेरा नाम महाराणा है। मैं एक कुशल मूर्तिकार हूँ। मैं रमणीय मूर्तियों का निर्माण करूंगा।*

यथार्थ में वह थे जगन्नाथ, आए निर्मित मूर्ति श्रीनाथ ।
बोले फिर हे नरनाथ, लगें इक्कीस दिन क्षदन नाथ ।। (१०२)

भावार्थ: *यथार्थ में वह (स्वयं) जगन्नाथ (प्रभु) ही थे जो भगवान् की मूर्तियां निर्मित करने आए थे। वह बोले, मुझे प्रभु की मूर्ति निर्मित करने में २१ दिन लगेंगे।*

रखूँ मैं बंद द्वार धुवन, न हो प्रवेश किसी भूजन ।
दिवस इक्कीस समापन, करें सभी विग्रह दर्शन ।। (१०३)

भावार्थ: *मैं भवन (मूर्ति निर्माण स्थल) के द्वार बंद रखूंगा। किसी भी पृथ्वीवासी का प्रवेश नहीं होगा। २१ दिन की समाप्ति पर सभी मूर्तियों के दर्शन करेंगे।*

पूर्वावधि यदि खोले पट, करूँ बंद कार्य झटपट ।
त्यागूं मैं तुरंत विष्टट, रहेंगे अपूर्ण विग्रह भूभट ।। (१०४)

भावार्थ: *अगर (इस २१ दिन की अवधि से पूर्व) अवधि से पूर्व (मूर्ति निर्माण भवन के) द्वार खोल दिए तो मैं अपना कार्य तुरंत बंद कर दूंगा। मैं तुरंत स्थान को छोड़ दूंगा। हे नरेश,मूर्तियां अपूर्ण ही रह जाएंगी।*

है स्वीकार हमें निर्देश, करो तुम निर्मित मूर्ति सुरेश ।
समादित किए तब कर्त्वेष, बीते चतुर्दिस दिन कर्मेश ।। (१०५)

भावार्थ: *(नृप ने कहा) हमें आपका निर्देश स्वीकार है। आप प्रभु की मूर्ति निर्माण करें। तब मूर्तिकार ने कार्य प्रारम्भ किया। मूर्तिकार को १४ दिन बीत गए (मूर्ति निर्माण भवन में १४ दिन हो गए।*

नहीं पेय नहीं भोजन, हो कैसे निर्वाह मानव जीवन ।
हुए अति चिंतित राजन, संग महिषी सोचें संछेदन ।। (१०६)

भावार्थ: *(मूर्तिकार ने इन १४ दिनों में) न कोई पेय लिया और न ही कोई भोजन। (बिना पेय एवं भोजन के १४ दिन तक) मानव का जीवन निर्वाह कैसे हो सकता है? सम्राट अत्यंत चिंतित हो गए। महारानी के साथ इसका समाधान सोचने लगे।*

दें नृप आज्ञा सचिव प्रधान, खोलो पट तुरित धर्मवान ।
पड़े चरण सचिव सुजान, न उचित अविज्ञा संविधान ।। (१०७)

भावार्थ: *तब प्रधान मंत्री को सम्राट (इन्द्रद्युम्न) ने तुरंत द्वार खोलने की आज्ञा दी। बुद्धिमान सचिव ने तब (राजा के) पैर पकड़ लिए और कहा, निर्देश का उल्लंघन करना उचित नहीं है।*

करें आग्रह तब सुमति रानी, प्राज्ञ सचिव सुनो वानी ।
ब्रह्महत्या पाप उत्तरानी, हों न यदि जीवित महाज्ञानी ।। (१०८)

भावार्थ: *तब श्रेष्ठ महारानी ने आग्रह किया, हे ज्ञानी सचिव हमारी बात सुनो। अगर कुशल (मूर्तिकार) जीवित न हुए तो हम पर ब्रह्म-हत्या का पाप लग जाएगा।*

माने वचन विपरीत इच्छा, खोले पट हेतु ब्राह्मण रक्षा ।
थे अति व्यस्त कार कक्षा, करें क्षदन विग्रह वह दक्षा ।। (१०९)

भावार्थ: अपनी इच्छा के विपरीत (सम्राट एवं महारानी के) वचन मानकर तब उन्होंने ब्राह्मण की रक्षा हेतु (भवन के) पट खोल दिए। दक्ष शिल्पकार भवन के अंदर मूर्तियां निर्माण करने में अत्यंत व्यस्त थे।

थीं असिद्ध विग्रह तलजा, अपूर्ण प्रभु पग कर भुजा ।
बोले ब्राह्मण हे महाराजा, क्यों तोड़ी तुमने संविधजा ।। (११०)

भावार्थ: *फर्श पर अनसुलझी मूर्तियां थीं। (मूर्तियों में) प्रभु के अपूर्ण पैर, हाथ, भुजा (इत्यादि) थे। ब्राह्मण बोले, हे सम्राट, आपने नियम क्यों तोड़ा (निर्देश का पालन क्यों नहीं किया)?*

हैं नितांत सप्त और दिन, कर सकूं विग्रह सम्पूरन ।
संभव यही इच्छा भगवन, सो खोले तुमने पट भवन ।। (१११)

भावार्थ: *अभी मुझे मूर्तियां सम्पूर्ण करने के लिए सात दिन और आवश्यक हैं। सम्भवतः प्रभु की ऐसी ही इच्छा होगी, इसी कारण आपने भवन का द्वार खोल दिया। (प्रभु की ऐसी ही इच्छा होगी कि विग्रह अपूर्ण ही रहें। प्रभु की विग्रह अपूर्ण रखने का रहस्य इस काव्य के अंतिम अध्याय में दिया गया है।)*

हुए शिल्पी तब अदृश्य, न समझ सका कोई रहस्य ।
पछताएं नृप देख दृश्य, मैं अभग अभद्र मूर्ख मनुष्य ।। (११२)

भावार्थ: *(इतना कहकर) तब शिल्पकार अदृश्य हो गए (चले गए)। यह दृश्य देखकर सम्राट पछताने लगे। (अपने आप को कोसने लगे) मैं कितना अभागा, अभद्र और मूर्ख व्यक्ति हूँ।*

हुई तभी आकाशवानी, करो चिंता नहीं नृप सुजानी ।
हुआ यह मेरी मनमानी, इच्छा हूँ प्रगट यही रूपानी ।। (११३)

भावार्थ: *तभी आकाशवाणी हुई। हे बुद्धिमान सम्राट, चिंता नहीं करो। यह मेरी इच्छा से ही हुआ है। मेरी इसी (अपूर्ण) रूप में प्रगट होने की इच्छा है।*

करो मूर्ति मंदिर स्थापित, इसी रूप में हों प्रतिष्ठापित ।
हों पचक विद्याधर वंशति, करें विविध नैवेद्य पचति ।। (११४)

भावार्थ: *अब इन मूर्तियों को मंदिर में स्थापित करो, और इसी रूप में प्रतिष्ठित करो। विद्याधर के वंशज बावर्ची बन विविध भांति का नेवैद्य पकाएं।*

करो अन्य मंदिर निर्मित, वर्तिस् विश्वावसु अविस्तृत ।
गांव दयिता अन्तरंगति, गंडमंडल गुंडिचा आख्यति ।। (११५)

भावार्थ: *विश्वावसु के निवास स्थान के पास एक अन्य मंदिर का निर्माण करो। यह ग्राम दयिता के अंदर हो। यह गुंडिचा मंदिर नाम से प्रसिद्ध होगा।*

करूँगा मैं वहां विश्राम, दस दिन हर वर्ष अविराम ।
हों संग सुभद्रा बलराम, करें सेवा सबर कुलग्राम ।। (११६)

भावार्थ: *मैं वहां निरंतर हर वर्ष दस दिन विश्राम करूंगा। मेरे साथ बलराम और सुभद्रा भी होंगे। सबर कुलजाति के लोग हमारी सेवा करेंगे।*

जाएंगे हम रथ पथन, हो उत्सव विराट इस धुवन ।
सुने सभी वचन गगन, हर्षित हुए सब भूजन मन ।। (११७)

भावार्थ: *हम (भगवान् जगन्नाथ स्वयं, बलराम एवं सुभद्रा) रथ पर चढ़ कर जाएंगे। इस स्थल पर विशाल उत्सव होगा। आकाशवाणी सुनकर सभी लोगों के हृदय हर्षित हुए।*

की पालन आज्ञा श्रीपति, हुईं स्थापित मंदिर मूर्ति ।
गए ब्रह्मलोक नरपति, करें विग्रह ब्रह्म प्रतिष्ठापित ।। (११८)

भावार्थ: *प्रभु की आज्ञा का पालन हुआ। मूर्तियां मंदिर में स्थापित कर दी गईं, तब नरेश (इन्द्रद्युम्न) ब्रह्मलोक को गए। (उनकी इच्छा थी कि) ब्रह्मदेव इन मूर्तियों को प्रतिष्ठापित करें।*

श्री विग्रह प्रकाश

थे इन्द्रद्युम्न जब ब्रह्मलोक, सुनो कथा घटी भूलोक ।
गईं गुंडिचा तब कंदरोक, करें ध्यान भरु सबलोक ।। (११९)

भावार्थ: *जब (सम्राट) इन्द्रद्युम्न ब्रह्मलोक में थे तो जो घटना पृथ्वी पर घटी उसकी कथा सुनो। (महारानी) गुंडिचा सर्वलोक के स्वामी (प्रभु) के ध्यान हेतु गुफा में चली गईं।*

बीत गए वर्ष कई शत, मंदिर ढका बालू अधत ।
थे नृप गालमाधव तत, गए आखेट सागर तीरत ।। (१२०)

भावार्थ: *कई सौ वर्ष बीत गए। (सम्राट इन्द्रद्युम्न द्वारा निर्मित) मंदिर बालू के अंदर ढक गया। (उसी समय) सत्य (वादी) गालमाधव (कलिंग प्रदेश के) नरेश हुए। वह (एक दिन) आखेट करने समुद्र तट पर गए।*

गिरा अश्व टकरा वस्तु, हुए चोटिल महाराज धर्मस्तु ।
दिए आज्ञा खोदें अर्धस्तु, मिला मंदिर नियोग अस्तु ।। (१२१)

भावार्थ: *उनका (सम्राट गालमाधव) अश्व किसी वस्तु से टकरा गया। धार्मिक महाराज को कुछ चोटें भी आईं। उन्होंने वहां पृथ्वी को खोदने का आदेश दिया। (खोदने पर) वहां प्रभु मंदिर मिला।*

था यह वही हरि निवसति, निर्मित इन्द्रद्युम्न नरपति ।
गालमाधव किए प्रयमित, बने अधिपति वह किर्मित ।। (१२२)

भावार्थ: *यह वही हरि मंदिर था जिसे सम्राट इन्द्रद्युम्न ने निर्मित किया था। (सम्राट) गालमाधव ने उसका जीर्णोद्धार किया। इस प्रकार वह इस (मंदिर) के स्वामी बन गए।*

लौटे जब इन्द्रद्युम्न राजा, मिले गालमाधव महाराजा ।
किए वह निर्माण भुवनजा, अपि स्थापित गरुड़ध्वजा ।। (१२३)

भावार्थ: *जब सम्राट इन्द्रद्युम्न (ब्रह्मलोक से) लौटे तब वह सम्राट गालमाधव से मिले। उन्होंने (सम्राट इन्द्रद्युम्न) बताया कि इसका (हरि मंदिर का) निर्माण उन्होंने ही किया था, और गरुड़ध्वज की स्थापना की थी।*

है कोई प्रमाण सत्पुरुष, बोले गालमाधव पोपुरुष ।
आए कागभुसुंडि पतष, मैं प्रत्यक्षदर्शी इस करस ।। (१२४)

भावार्थ: *तब सम्राट गालमाधव बोले, (हे राजन) क्या इसका कोई प्रमाण आपके पास है? उसी समय कागभुसुंडि पक्षी आ गए और उन्होंने बतलाया कि वह इस कार्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।*
विशेष: *काग कागभुसुंडि जी को प्रभु श्री शंकर एवं प्रभु श्री राम ने अमरत्वता का वरदान दे रखा है। हर काल में वह उपस्थित रहते हैं, विशेषकर जहां प्रभु का नाम स्मरण हो।*

ब्रह्मदेव तब हुए उपस्थित, इन्द्रयद्युम्न हैं अधिपति ।
हैं यह जगन्नाथ समर्पित, सौंपो इन्हें मंदिर नरपति ।। (१२५)

भावार्थ: *तब ब्रह्मदेव भी वहां उपस्थित हो गए। (उन्होंने भी इसका प्रमाण दिया कि) इन्द्रद्युम्न ही इस (मंदिर) के स्वामी हैं। यह (प्रभु) जगन्नाथ को पूर्णतः समर्पित हैं। हे नरेश (गालमाधव) इन्हे मंदिर सौंप दो।*

पड़े पग तब गालमाधवा, हो तुम मेरे ज्येष्ठ पितरवा ।
करो क्षमा मेरे मानित्वा, जान छोट भ्राता वञ्चवा ।। (१२६)

भावार्थ: *तब (सम्राट) गालमाधव ने (सम्राट इन्द्रद्युम्न) के चरण पकड़ लिए। आप मेरे पितृ हैं (पूर्वज हैं)। मेरे माननीय मुझे मूर्ख छोटा भाई समझकर क्षमा कर दें।*

जागीं तब गुंडिचा साधना, हुआ आभास लौटे भर्तना ।
आईं वह तीर वारकिना, नमनित नृप व् चतुरमुखना ।। (१२७)

भावार्थ: *तब (प्रभु कृपा से) (साम्राज्ञी) गुंडिचा साधना से जाग गईं। उन्हें आभास हुआ कि उनके पति (ब्रह्मलोक से) लौट आए हैं। वह तुरंत समुद्र तट (कलिंग के बंकिम सागर तट जहां सम्राट इन्द्रद्युम्न ने प्रभु जगन्नाथ मंदिर निर्मित किया था) पर पहुँची। उन्होंने नृप (अपने पति इन्द्रद्युम्न) एवं ब्रह्मदेव को प्रणाम किया।*

बोले नरेश हे प्रभु ब्रह्मा, करो प्रतिष्ठापित प्रभु प्रतिमा ।
विधिवत करें हम वंदनमा, द्वि भाई संग जगत अम्मा ।। (१२८)

भावार्थ: *सम्राट (इन्द्रद्युम्न) बोले, हे प्रभु ब्रह्मदेव, अब आप भगवान् की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठापित करो जिससे हम विधिवत दोनों भाइयों (प्रभु जगन्नाथ एवं प्रभु बलराम) एवं विश्व-माँ सुभद्रा की वन्दना कर सकें।*

बोले तब ब्रह्मा भगवन, असमर्थ करूँ मैं प्रतिष्ठापन ।
आवित्त प्रकाशित दिव्यन, ज्योति परम जगन्नाथन ।। (१२९)

भावार्थ: *तब ब्रह्मदेव बोले, मैं प्रकाशित दिव्य मूर्ति जो स्वयं आभित श्री जगन्नाथ हैं, उनके प्रतिष्ठापन करने के लिए असमर्थ हूँ (भगवान् को कौन प्रतिष्ठापित कर सकता है, वह तो स्वयं ही यहां उपस्थित हैं)।*

बाँधू ध्वजा एक शीर्षति, प्रतीक प्रभु पावन मूर्ति ।
नमन करे जो जीवति, हों नाश पाप पाए मुक्ति ।। (१३०)

भावार्थ: *मैं शिखर पर एक ध्वजा बांधे देता हूँ जो पवित्र प्रभु के विग्रह का प्रतीक होगा। जो भी प्राणी इसको नमन करेगा, उसके समस्त पापों का नाश होगा और वह (मरण उपरान्त) मुक्ति पाएगा।*

किए ब्रह्मदेव स्थापित, ध्वजा चक्र मंदिर अग्रित ।
करें सब नमन अर्पित, जगन्नाथ हली सुभद्र मूरत ।। (१३१)

भावार्थ: *तब ब्रह्मदेव ने मंदिर के अग्र स्थान पर एक ध्वजा एवं चक्र की स्थापना की। (इस ध्वजा एवं चक्र) को सब नमन करते हैं जो श्री जगन्नाथ, श्री बलराम एवं माता सुभद्रा की मूर्ति (समान) हैं।*

चक्र सुदर्शन है पूज्यनीय, करें पूजन सब इदंतनीय ।
हों प्रसन्न हरि अचिंत्यनीय, दें आशीष हरि रमणीय ।। (१३२)

भावार्थ: *सुदर्शन चक्र पूज्यनीय है। सभी उपस्थित (प्राणी) उनका पूजन करने लगे। इससे भगवान् जगन्नाथ प्रसन्न हुए। रमणीय प्रभु ने सब को आशीर्वाद दिया।*

पड़े पग इन्द्रद्युम्न भगवन, दो मुझे प्रभु एक शंसन ।
कहें नृप हे ईश अवतरन, होए भीड़ हेतु हरि दर्शन ।। (१३३)

भावार्थ: *तब नृप इन्द्रद्युम्न भगवान् (श्री जगन्नाथ) के पग पड़ गए और बोले, हे प्रभु, मुख्य एक वरदान दीजिए। हे ईशावतार, आपके दर्शन हेतु भीड़ इकट्ठी होगी।*

दो अनुमति प्रभु अपार, करें बंद एक प्रहर द्वार ।
मुस्काए तब जगद्धार, कार्य अभील है भक्तार ।। (१३४)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले) हे अपरम्पार प्रभु, केवल एक पहर के लिए ही (मंदिर के) द्वार बंद करें, ऐसी अनुमति दीजिए। तब प्रभु मुस्कुराकर बोले, हे भक्त शिरोमणि, कार्य तो कठिन है।*

खाना होगा सतत भोजन, जगा रहूँ यदि इस प्रयोजन ।
करो प्रबंध हे प्रिय भक्तन, उपलब्ध हर समय भोजन ।। (१३५)

भावार्थ: *(प्रभु बोले) इस प्रयोजन हेतु (मैं एक पहर ही शयन करूँ) कि मैं जागता रहूँ, लगातार मुझे भोजन करना होगा। हे भक्त, इसका प्रबंध करो कि भोजन हर समय उपलब्ध रहे।*

पड़ पद बोले तब नरेंद्र, हुआ कृतार्थ मैं श्री सुरेंद्र ।
चले भंडारा हे महेंद्र, हर काल हर क्षण श्री सर्वेंद्र ।। (१३६)

भावार्थ: *तब नरेंद्र (नरेश) (प्रभु के) पद पकड़ कर बोले, हे भगवन, मैं कृतार्थ हो गया (प्रभु ने उन्हें यह वरदान दे दिया कि वह केवल एक प्रहर के किए ही शयन करेंगे। हे प्रभु, यहां हर काल हर पल भंडारा चलता रहेगा।*

तथास्तु कहे तब भगवान्, मांगो वर हेतु स्वकल्यान ।
करबद्ध बोले तब सुजान, मैं रहूँ अप्रसूत दो वरदान ।। (१३७)

भावार्थ: *भगवान् ने तथास्तु (ऐसा ही हो) कहा (केवल एक प्रहर शयन करने का वरदान दे दिया)। इसके पश्चात (प्रभु) बोले, (हे नृप) अपने स्व-कल्याण के लिए वरदान मांगो (पहला वरदान तो लोक कल्याण के लिए था)। तब कर बद्ध बुद्धिमान (नृप) बोले, हे प्रभु, मुझे वरदान दें कि मैं निःसंतान रहूँ।*

हुए विस्मित समस्त दत्ति, हेतु लक्ष्य क्या श्री नृपति ।
बोले इन्द्रद्युम्न भूपति, कठिन विद माया मायापति ।। (१३८)

भावार्थ: *सभी उपस्थित गण आश्चर्यचकित हो गए। (इस प्रकार का वरदान माँगने का) नरेश का उद्देश्य क्या है? (तब) सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले, प्रभु की माया को समझना अत्यंत कठिन है।*

होंगे यदि मेरे बाल्या, है संभव दूषित आर्ति माया ।
हेतु सम्पति हो विग्रह्या, भूलें पूजन श्री हृषीकेश्या ।। (१३९)

भावार्थ: *(सम्राट इन्द्रद्युम्न बोले) अगर मेरे संतान होगी तो संभव है कि (प्रभु की) माया के कष्ट से वह दूषित हो जाएं। सम्पत्ति के लिए झगड़े करें और प्रभु का पूजन भूल जाएं।*

नहीं चाहूँ मेरी संतान, समझे संपत्ति प्रभु स्वयाम ।
है धन मठ जन कल्यान, नहीं यह विलास सामान ।। (१४०)

भावार्थ: *मैं नहीं चाहता कि मेरी संतान प्रभु की संपत्ति को स्वयं की समझे। मठ (मंदिर) का धन लोक कल्याण के लिए होता है न कि भोग विलास के लिए।*

हो नर्कवासी वह प्रानी, करे विभास धन धर्मदानी ।
संचालक रूप न्यासनी, जाने धन अछूत नारायनी ।। (१४१)

भावार्थ: *जो प्राणी धर्मदान का दुरुपयोग करता है, वह नर्कवासी होता है। संचालक तो सरंक्षक होता है जो प्रभु के धन को अछूत मानता है (उसमें अपना स्वार्थ नहीं देखता)।*

इन्द्रद्युम्न के वचन मधुरक, सुन हुए प्रसन्न श्री दैवक ।
दिए वर हरि मनचाहक, विराजे आसन श्री पौण्यक ।। (१४२)

भावार्थ: *(सम्राट) इन्द्रद्युम्न के मनोहर वचन सुन प्रभु प्रसन्न हुए। प्रभु ने उन्हें मनचाहा वर दिया, और अपने आसन पर विराजित हुए।*

की स्तुति सब इदंतर, करें वर्णन गुंडिचा देवघर ।
है कोस एक यह अर्धर, मंदिर जगन्नाथ मुख्यकर ।। (१४३)

भावार्थ: *(जब भगवान् श्री जगन्नाथ अपने आसन पर विराजमान हो गए तब) सभी उपस्थित लोगों ने (प्रभु की) स्तुति की। अब गुंडिचा मंदिर का वर्णन करें। यह स्थान मुख्य जगन्नाथ मंदिर से एक कोस (तीन किलोमीटर) दूर स्थित है।*

आषाढ़ शुक्ल की द्वितीया, जाएं प्रभु गुंडिचा स्थापया ।
करें दिवस नव समाश्रया, लौटें मंदिर दिन दशांशया ।। (१४४)

भावार्थ: *आषाढ़ शुक्ल (पक्ष) की द्वितीया को प्रभु गुंडिचा मंदिर जाते हैं। वहां नौ दिन विश्राम कर दशमी को (मुख्य) मंदिर लौट आते हैं।*

हो रथ यात्रा आयोजन, मंदिर नित्य गुंडिचा मध्यन ।
करें यहां विश्राम भगवन, संग बलराम सुभद्रा बहन ।। (१४५)

भावार्थ: *(इस काल में) रथ यात्रा का मुख्य मंदिर से गुंडिचा भवन (मंदिर) तक आयोजन होता है। यहां (प्रभु) जगन्नाथ बलराम एवं सुभद्रा बहन के साथ विश्राम करते हैं।*

रहें नव दिवस गृह पावन, करें भोग विविध व्यंजन ।
करें विहार नौका श्रीमन, हो अभिषेक जल तीर्थन ।। (१४६)

भावार्थ: *इस पवित्र गृह में नौ दिन रहते हुए विविध व्यंजनों का भोग स्वीकार करते हैं। प्रभु नौका विहार करते हैं। तीर्थों के जल से उनका (प्रतिदिन) अभिषेक किया जाता है।*

लें आनंद जल क्रीड़ा प्रभु, हों लीला सों अस्वस्थ विभु ।
हेतु स्वास्थ्य लाभ विश्वंभु, करें विश्राम मंदिर फिर प्रभु ।। (१४७)

भावार्थ: *जल क्रीड़ा का प्रभु आनंद लेते हैं। (अत्यधिक जल क्रीड़ा करने से) फिर प्रभु अस्वस्थ होने की लीला करते हैं। स्वास्थ्य लाभ के लिए नित्य मंदिर में प्रभु विश्राम करते हैं।*

हों पट बंद दिन पंचदस, गंडमंडल जगन्नाथ शर्वस ।
करें सेवा श्रीमति धान्यस, नहीं अनुमति दर्श वेदस ।। (१४८)

भावार्थ: *१५ दिन प्रभु जगन्नाथ मंदिर के द्वार बंद रहते हैं। (इस समय) (प्रभु की पत्नी) लक्ष्मी उनकी सेवा करती हैं। प्रभु के दर्शन की अनुमति (इस काल में) नहीं होती।*

है यह कथा अति पावन, कथित श्री चैतन्य भगवन ।
जो सुनें पढ़े यह कथन, पाएं शान्ति समस्त जीवन ।। (१४९)

भावार्थ: *यह अति पवित्र कथा श्री चैतन्य महाप्रभु के मुखारविंद से कथित है। जो (प्राणी) इस कथा को सुनेंगे अथवा पढ़ेंगे, उन्हें जीवन पर्यन्त शान्ति प्राप्त होगी (उनका जीवन सुख एवं शान्ति से भरपूर्ण होगा)।*

अपूर्ण विग्रह रहस्य

है वर्णित इस कथा में, हैं अपूर्ण विग्रह मंदिर में ।
रहस्य प्रकथ ग्रंथन में, थी हरि इच्छा इस गूढ़ में ।। (१५०)

भावार्थ: *इस कथा में ऐसा वर्णित किया गया है कि (भगवान् जगन्नाथ) मंदिर में विग्रह अपूर्ण हैं। इसका रहस्य ग्रंथो में वर्णित है। इस गूढ़ में प्रभु की इच्छा निहित थी।*

काल था यह दुःखिन, थे दिव्यांग अति अनादरन ।
करे न कोई अभ्यर्हन, कुल समाज और क्षितन ।। (१५१)

भावार्थ: *यह अत्यंत कठिन समय था जब दिव्यांग तिरस्कृत थे। उनका परिवार, समाज और संसार में कोई सम्मान नहीं था।*

थे भगवान् अति शुचिति, दिव्यांग मेरी प्रिय कृति ।
लिए जन्म विशेष कर्मति, हैं साधन मोक्ष दिव्यति ।। (१५२)

भावार्थ: *प्रभु को (दिव्यांगों के हित में) अति चिंता थी। दिव्यांग तो मेरी प्रिय रचना हैं (मेरी प्रिय संतानें है)। इनका जन्म विशेष कारण से होता है। यह दिव्य विभूति मोक्ष का साधन हैं (अतः इस तन से प्रभु का प्रेम एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है)।*

विशेष: *श्रुति में ऐसा उल्लेख है कि प्रभु किसी विभूति को दिव्यांग रूप देकर उसके सब पूर्व जन्मों के पापों को नष्ट कर देते है। वह विभूति एक रिक्त-पत्र की भांति होती है। इस अवस्था में प्रभु के ध्यान से उसे तुरंत मुक्ति प्राप्त होती है।*

लिए निश्चय श्री भगवान्, लूँ अवतार स्वयं दिव्यांग ।
फेरी बुद्धि नृप महान, करें ब्रह्म जब मूर्ति निर्मान ।। (१५३)

भावार्थ: *प्रभु ने ऐसा निर्णय लिया कि वह स्वयं दिव्यांग रूप में अवतरित होंगे। अतः उन्होंने महाराजा (इन्द्रद्युम्न) की बुद्धि फेर दी जब स्वयं प्रभु मूर्ति निर्माण कर रहे थे।*

थी अवधि मूर्ति क्षदन, इक्कीस दिन निर्णित ब्राह्मन ।
थी नहीं आज्ञा कोई जन, खोले द्वार निर्माण भवन ।। (१५४)

भावार्थ: *मूर्तियों को निर्माण करने की अवधि ब्राह्मण ने २१ दिन माँगी थी। (इस अवधि में) किसी प्राणी को निर्माण भवन के द्वार खोलने की आज्ञा नहीं थी।*

पर खोले द्वार पूर्वाविधि, जैसे वर्णित काव्य अंतरिधि ।
छोड़े कार्य तुरंत विशेषधि, क्षदन मध्य मूर्ति ब्रह्मपति ।। (१५५)

भावार्थ: *लेकिन द्वार अवधि से पूर्व (दो सप्ताह में ही) खोल दिए जैसा कि इस काव्य के अंतर्गत वर्णित है। ब्राह्मण देव जो (मूर्ति निर्माण) विशेषज्ञ थे उन्होंने मूर्ति निर्माण कार्य बीच में ही छोड़ दिया।*

अपूर्ण रहीं सब मूर्ति, रूप दिव्यांग शरीर प्रकृति ।
हुए प्रतिष्ठित जगदपति, दिए जस आदेश श्री-पति ।। (१५६)

भावार्थ: *सभी मूर्तियां (इस कारण) अपूर्ण रहीं, (जैसे कि) प्रभु दिव्यांग रूप में अवतरित हुए। प्रभु के आदेशानुसार यही प्रभु की मूर्तियां (दिव्यांग मूर्तियां) मंदिर में प्रतिष्ठापित कर दी गईं।*

दें श्री जगन्नाथ संदेशा, हैं दिव्यांग समान ईशा ।
दो मान सम जगदीशा, हो कल्याण लौकयीशा ।। (१५७)

भावार्थ: *(भगवान्) जगन्नाथ ने यह सन्देश दिया कि दिव्यांग ईश समान हैं। उन्हें प्रभु की भांति सम्मान देकर सभी प्राणी अपना कल्याण करें।*

एक बार थे दुःखित नरेशा, हैं अपंग मेरे जगदीशा ।
हुए प्रगट प्रभु अग्रेषा, करो नहीं क्रंदन नृप प्रकर्षा ।। (१५८)

भावार्थ: *एक बार नरेश (इन्द्रद्युम्न) दुःखित थे कि मेरे प्रभु (विग्रह) अपंग हैं। तभी उनके समक्ष प्रभु प्रगट हुए (और बोले) हे श्रेष्ठ नृप, रोओ नहीं।*

समझो नरेश मेरे गुण, नहीं आवश्यक पद विचरण ।
हूँ मैं सर्वव्यापेश्वर गण, बिन पग करूँ विश्व-भ्रमण ।। (१५९)

भावार्थ: *हे नरेश मेरे (प्रभु के) गुण समझो। मुझे चलने के लिए पैरों कि आवश्यकता नहीं है। मैं सर्व-व्यापी हूँ। बिना पग के ही विश्व-भ्रमण करता हूँ।*

सुन सकूं मैं बिन कर्ण, करूँ कार्य बिन कर शोषण ।
बिन मुख करूँ आहारण, बिन वाणी बोलूं वाक्यण ।। (१६०)

भावार्थ: *मैं बिना कानों के सुन सकता हूँ। बिना हाथों को उपयोग में लाये कार्य कर सकता हूँ। बिना मुख के आहार कर सकता हूँ। बिना वाणी के वाक्य बोल सकता हूँ।*

करते क्यों हो तुम शोक, सक्षम करूँ जग आलोक ।
सुन नृप त्यागा तब शोक, त्राहि त्राहि ईश सर्वलोक ।। (१६१)

भावार्थ: (प्रभु बोले) (हे नृप) तुम शोक क्यों करते हो। मैं (अपूर्ण स्थति में भी) जग कल्याण करने के लिए सक्षम हूँ। तब नरेश (इन्द्रद्युम्न) ने शोक त्याग दिया और हे प्रभु त्राहि त्राहि (मेरी रक्षा करो रक्षा करो) कहने लगे।

इति श्री जगन्नाथ रथ यात्रा कथा

कवि डॉ यतेंद्र शर्मा - सन १९५३ में एक हिन्दू सनातन परिवार में जन्मे डॉ यतेंद्र शर्मा की रूचि बचपन से ही सनातन धर्म ग्रंथों का पठन पाठन एवं श्रवण में रही है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने अपने पितामह श्री भगवान् दास जी एवं नरवर संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य श्री सालिग्राम अग्निहोत्री जी से प्राप्त की और पांच वर्ष की आयु में महर्षि पाणिनि रचित संस्कृत व्याकरण कौमुदी को कंठस्थ किया। उन्होंने तकनीकी विश्वविद्यालय ग्राज़ ऑस्ट्रिया से रसायन तकनीकी में पी.अच्.डी की उपाधी विशिष्टता के साथ प्राप्त की। सन १९८९ से डॉ यतेंद्र शर्मा अपने परिवार सहित पर्थ ऑस्ट्रेलिया में निवास कर रहें हैं, तथा पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के खनन उद्योग में कार्य रत हैं।

सन २०१६ में उन्होंने अपने कुछ धार्मिक मित्रों के साथ एक धार्मिक संस्थान 'श्री राम कथा संस्थान पर्थ' की स्थापना की। यह संस्थान श्री भगवान् स्वामी रामानंद जी महाराज (१४वीं- १५वीं शताब्दी) की शिक्षाओं से प्रभावित है तथा समय समय पर गोस्वामी तुलसी दास जी रचित श्री राम चरित मानस एवं अन्य धार्मिक कथाओं का प्रवचन, सनातन धर्म के महान संतों, ऋषियों, माताओं का चरित्र वर्णन एवं धार्मिक कथाओं के संकलन में अपना योगदान करने का प्रयास करती है।

श्री राम कथा संस्थान पर्थ

कार्यालय: ३५ मायना रिट्रीट, हिलरीज, पर्थ, ऑस्ट्रेलिया – ६०२५
वेबसाइट: https://shriramkatha.org
ई-मेल: srkperth@outlook.com
टेलीफोन: +६१ (०८) ९४०१ १५४३